Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

मनुस्मृति में वर्णित राजतन्त्र एवं शासन व्यवस्था

Madhu Gupta[1]* Dr. Yogendra Kumar Bhanu[2]

[1] Research Scholar, Department of Sanskrit, Maharaja Surajmal Brij University, Bharatpur, Rajasthan

[2] Research Director, Associate Professor, Department of Sanskrit, Maharaja Surajmal Brij University, Bharatpur, Rajsthan

सार – ***मनु ने एक दृढ़ तथा आदर्श राज्य-व्यवस्था तथा हिन्दू राजनीतिक व्यवस्था दी। मनु का कथन है कि राजा के अन्यायी रहने पर वह बन्धु-बान्धवों के साथ शीघ्र नष्ट हो जाता है। मनु का राजलेख एवं राजनियम लिपिबद्ध होने के पूर्व प्रचलित थे और बहुत सम्भव है कि यूनानी व्यवस्थापक सोलन तथा लाईकारा से भी प्राचीन थे।***

धर्म प्रधान शासन सर्वोत्तम शासन कहलाता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में धर्म प्रायः रही है, इसलिए भारतीय समाज का मूल पाठ धर्म पर ही आश्रित है। धर्म से युक्त शासन हिंसक शासन नहीं होता है और धर्म निष्प्राण शासन हिंसा से युक्त शासन है, इसलिए भारतीय संस्कृति वेद से युक्त एवं धर्म से युक्त संस्कृति गयी है, क्योंकि भारतीय समाज बहु सम्प्रायः एवं बहु जातिय व बहुभावी, सम्प्राय रहा है। इसी प्रकार स्मृतिकारों ने भी धर्म की परिभाषा दी है।

कीवर्ड – ***राजतन्त्र शासन व्यवस्थाए प्रासिंगकता***

----------X----------

प्रस्तावना

1.1 मनुस्मृति की राजनीतिक व्यवस्था

मनु ने एक दृढ़ तथा आदर्श राज्य-व्यवस्था तथा हिन्दू राजनीतिक व्यवस्था दी। मनु का कथन है कि राजा के अन्यायी रहने पर वह बन्धु-बान्धवों के साथ शीघ्र नष्ट हो जाता है। मनु का राजलेख एवं राजनियम लिपिबद्ध होने के पूर्व प्रचलित थे और बहुत सम्भव है कि यूनानी व्यवस्थापक सोलन तथा लाईकारा से भी प्राचीन थे।

प्राचीन भारतीय राज्य शास्त्र प्रणेताओं के इतिहास में मनु का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। भारतीय परम्परा के अनुसार प्राचीन भारतीय राज्य शास्त्र को राज्य शास्त्र का प्रणेता माना है और विशालाक्ष महेन्द्र, शुक्राचार्य, भारद्वाज और गौरी शिरा आदि जगत् विख्यात् राजशास्त्र प्रणेताओं में इन्हें भी परिगणित किया है। राजशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों की स्थापना उनके द्वारा की यी है, वह सिद्धान्त उनके एकमात्र ग्रन्थ मनुस्मृति में उपलब्ध है, ऐसा जनता का विश्वास है।

मनु ने राजा के लिए बताया है कि वेदों को प्राप्त (उपनयन संस्कार से युक्त) क्षत्रिय (अभिषिक्त राजा) न्याय पूर्वक अपने राज्य में रहने वाली प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करे। सम्पूर्ण चराचर की रक्षा के लिए भगवान् ने राजा की सृष्टि (ईश्वर), इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और कुबेर का सारभूत नित्य अंश लेकर राजा को अवतरित किया था, चूँकि राजा इन्द्र आदि सब देवों के सार अंश से रचा गया था, इस कारण यह (राजा) देखने वालों के नेत्र तथा मन को सूर्य के समान संतृप्त करता है।

अतः पृत्वी पर कोई भी इसे देखने में समर्थ नहीं होता, यह राजा प्रभाव (अपनी अधिक शक्ति) से अग्नि रूप है, वायु रूप है, सूर्य रूप है, चन्द्र रूप है, धर्मराज (यम) रूप है, कुबेर रूप है और महेन्द्र रूप में है। अतएव वह मनुष्य ही तो है, ऐसा मानकर बालक राजा का भी अपमान न करे, क्योंकि यह राजा के रूप में बड़ा देवता (दैवी शक्ति) स्थित रहता है।

1.2 मनुस्मृति का धार्मिक स्वरूप

धर्म प्रधान शासन सर्वोत्तम शासन कहलाता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में धर्म प्रायः रही है, इसलिए भारतीय समाज का मूल पाठ धर्म पर ही आश्रित है। धर्म से युक्त शासन हिंसक शासन नहीं होता है और धर्म निष्प्राण शासन हिंसा से युक्त शासन है, इसलिए भारतीय संस्कृति वेद से युक्त एवं धर्म से

www.ignited.in

युक्त संस्कृति गयी है, क्योंकि भारतीय समाज बहु सम्प्रायः एवं बहु जातिय व बहुभावी, सम्प्राय रहा है। इसी प्रकार स्मृतिकारों ने भी धर्म की परिभाषा दी है। जैमिनी के अनुसार, 'धर्म' ऐसा अभिलिखित उद्देश्य है, जिसका निर्देशन वैदिक आदेशों द्वारा हुआ है। वैशेषिक सूत्र के अनुसार धर्म वह है, जिससे अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।

आचार्य मनु का धर्म है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तये शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणाम।।

धर्म के पक्ष पर विशेष बल इसकी परिभाषा में दिया गया है। इस दृष्टि से महाभारत का कथन है कि अहिंसा परम धर्म है, जबकि मनु का विचार है कि परम धर्म आधार है।

भारतीय मान्यताओं के अनुसार धर्म शब्द के दो उद्देश्य है-

1. **अभ्युदय,**
2. **निःश्रेयस**

'धर्म' का प्रथम उद्देश्य जहाँ लौकिक सुख सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता की प्राप्ति की ओर इंगित करता है, श्रेयस का सम्बन्ध पारलौकिक उपलब्धियों से है, इसके साथ मुक्ति की भावना सन्निहित है, इस धर्म के साथ किसी भी प्रकार का साम्प्रदायिक प्रत्यय जोड़ देना भ्रान्ति मूलक है। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि मनु के धर्म का प्रत्यय प्लेटो के जस्टिस के विचार से अधिक निकट है, क्योंकि दोनों ही औचित्य पर अधिक बल देते हैं।

1.3 मनुस्मृति की राजनीतिक व्यवस्था

'व्यवस्था' शब्द की उत्पत्ति कार्यों एवं नियमों को किसी निश्चित स्थान पर सुविचारित करके बैठाना या रखना ही है। संगठन या व्यवस्था विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्यों केा बाँटने की रीति है। संगठन का अर्थ है कर्मचारियों की ऐसी व्यवस्था करना, ताकि कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्य को सुगमता के साथ पूरा किया जा सके। इस प्रकार व्यवस्था में किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को विभाजित तथा निर्धारित किया जा सके और उसके समस्त कार्यों में समन्वय स्थापित किया जा सके। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विभाजन किस प्रकार किया जाये तथा कार्यों के विविध इकाईयों को किस प्रकार समूह बद्ध किया जाए। अरस्तू ने भी कार्य विभाजन के दो तरीके बतलाये हैं- प्रथम मनुष्य का श्रेणियों के अनुसार कार्य का विभाजन, द्वितीय सेवा के अनुसार कार्य का विभाजन। हॉल्डेन समिति ने भी विकल्प सुझाये थे कि सम्बन्धित लोगों तथा वर्गों के अनुसार वितरण तथा सम्पन्न करने वाली सेवाओं के अनुसार वितरण। इसी प्रकार स्मृतिकारों ने अपनी व्यवस्था को कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार भी सम्पूर्ण वर्ण-व्यवस्था का आधार सृजित किया और महाभारत में भी गुण एवं कर्म दोनों को विभाजन में स्थान दिया है।

1.4 कर्म के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था-

ऐसा बतलाते हैं कि ब्राह्मण को धर्मशास्त्र की यत्नपूर्वक रक्षा करके यथा योग्य शिष्यों को पढ़ाना चाहिए और अन्य वर्णों को इस पठन-पाठन कार्य के लिए वर्जित बताया गया है और कहा कि ब्राह्मण शास्त्र पढ़ते या पढ़ाते हुए जो ब्राह्मण व्रत, यज्ञ अनुष्ठान करता है, वह ब्राह्मण कायिक, वाचिक आदि दोषों में लिप्त नहीं होता और अन्त में अपने सात पीढ़ियों तक के वंशज को पवित्र करता है और इस धरातम पृथ्वी को ग्रहण करने योग्य होता है।

इस धर्म शास्त्र में सम्पूर्ण धर्म, कर्म के गुणों और दोषों को बताया गया और इसी धर्मशास्त्र के अनुसार ही चारों वर्णों के लिए सनातन धर्म लाए गये। इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना आदि विषय कर्म बतलाये गये और क्षत्रिय को किसी भी विषय में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। क्षत्रिय को प्रजा पालन में तत्पर रहना चाहिए, जो क्षत्रिय अपने राज्य में प्रजा को किसी भी प्रकार के कष्ट को नहीं देखता, वह राजा प्रजा वात्सल्य योग्य नहीं बताया गया ह। अतः अन्त में मोक्ष की प्राप्ति से विमुख होता है। मनु ने कहा कि धर्मशास्त्रों में वैश्य को भी अपना कत्तव्य निभाने का दायित्व सौंपा गया है, वैश्य के लिए पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और व्यापार आदि में तत्पर रहना चाहिए। इन सभी कर्मों से यदि वह विमुख होता है, तो नरकगामी होता है। इसी प्रकार तीन वर्णों शूद्र को अनिन्दक रहते हुए सेवा करना चाहिए। अन्य सभी तीन वर्णों की सेवा करना ही प्रधान कार्य बतलाया है। मनुस्मृति में ऐसा कथन इस श्लोक के द्वारा उद्धृत किया है।

उपर्युक्त श्लोक द्वारा सम्पूर्ण वर्णों को अपनी-अपनी वृत्ति और कर्म को अलग-अलग बताकर ब्रह्म ने आगे के अपने वृत्तान्त में योनियों में पुरुष (मनुष्य) ककेा श्रेष्ठ बतलाया है। मनुष्य को सभी जीवों में श्रेष्ठतर बतलाया है, इसमें भी पुरुष रूपि ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग के अधम एवं उत्तम बतलाते हुए कहते हैं कि पुरुष के नाभी के ऊपर भाग को पवित्र

www.ignited.in

बतलाया है और बताया कि ब्रह्म के मुख से उत्पन्न होने, सभी वर्गों में श्रेष्ठ होने से और वेद को धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी होता है।

तीनों लोकों में कोई भी ब्रह्मज्ञानियों का पूज्य नहीं है। तप, विद्या, विशेष से वे आपस में पूजते हैं। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मज्ञानियों से बड़ा इस संसार में कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् गीता में कहा गया है-

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो हमकर्मणः।

शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धचेदकर्मणः।।

अर्थात् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू शास्त्र विहित कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र विश्व के राजशास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में मूर्धन्य माना जाता है। यह नितान्त यथार्थपरक और व्यावहारिक ग्रन्थ है, एक व्यक्ति होने के कारण इसमें अनुक्रम एवं अवस्था है, इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है-सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और प्रयोग (क्रियात्मक अनुभव) द्वारा कौटिल्य ने नरेन्द्र (चन्द्रगुप्त) के लिए शासन की यह विधि बताई है।

1.5 राजनय का स्वरूप एवं सिद्धान्त

राजनयिक अभिकर्ता वे व्यक्ति होते हैं,जो विदेशों में भेजे जाने वाले राज्य के प्रतिनिधियों के रूप में निवास करते हैं। वे उन दोनों देशों के मध्य,जिसके द्वारा यह भेजे जाते हैं तथा जहाँ भेजे जाते है, महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस प्रकार के कूटनीतिक (Diplomatic) कृत्य करते हैं एवं बनाएँ रखते हैं तथा राजनीतिक या विधिक सव्यवहार पूरा करते हैं वर्तमान समय में राजनीतिक प्रतिनिधियों की संस्था एक पद्धति हो गयी है,जिसके द्वारा राज्यों के बीच समागम प्रतिपादित किया जाता है। यह राजनयिक अभिकर्ताओं को भेजने तथा स्वीकार करने की प्रजा अनुसरण प्राचीन काल से ही किया जा रहा है। प्राचीन भारत में भीदूतों को एक राज्य से दूसरे राज्यों में भेजने की प्रथा थी। मनुस्मृति में जो भी वर्णन मिलता है, उससे पूर्ण रूपेण आश्वस्त होकर नहीं कहा जा सकता है, कि हकीकत में मनु का क्या मन्तव्य रहा होगा। इस सन्दर्भ में मानव धर्मशास्त्र में जो भी मूल्यांकित सामग्री उपलब्ध है, वह सूक्ष्म है, इस विषय-वस्तु के आधार पर सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि मनु वास्तविक रूप से सावयव स्वरूप से परिचित थे और इस सिद्धान्त का आश्रय उन्होंने मानव धर्मशास्त्र में राज्य के स्वरूप के वर्णन प्रसंग में समेट लिया था।

'कामन्दक' ने भी अपने 'कामन्दकीय नीतिसार' नामक ग्रन्थ में राज्य का सप्तांग स्वरूप माना है। उन्होंने भी राज्य के सात अंग्रों को स्वामी, अमान्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल और सुहृद नाम से सम्बोधित कर सप्तांग राज्य का वर्णन किया है।

इसी प्रकार स्मृतियों को संसार तथा राज्य को सावयव स्वरूप में स्वीकार किया गया है और ये इस प्रकार हैं- 1. स्वामी या राजा, 2. अमात्य, 3. राष्ट्र के लिए 'जनपद' या 'जन' दुर्ग के लिए 'पुर' दण्ड के लिए बेल का भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है।

मनु का कथन है कि पहले अंग बाद वालों की अपेक्षा महत्वपूर्ण है। अतः न्याय करते समय पहले वाले अंग को अधिक प्राथमिता देनी चाहिए। मनु के ही मत से यह सात अंग परस्पर एक-दूसरे के सहारे राज्य के अस्तित्व को उसी प्रकार स्थिर रखते हैं, जिस प्रकार तीन दण्डे एक-दूसरे के सहारे पर खड़े रहकर त्रिदण्ड रूप आकृति के अस्तित्व को पृथ्वी पर स्थित रख सकते हैं। सातों अंग परस्पर श्रेष्ठ अधम नहीं है, बल्कि प्रत्येक अंग का अपने-अपने पद पर महत्वपूर्ण स्थान है।

1.6 राजा की दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त-

राजा के देवत्व के सम्बन्ध में स्मृतियों में विस्तृत विवरण मिलता है। स्मृतियों में राजा और राज्य की दैवी उत्पत्ति बताई गयी है, मनु और बृहस्पति का मत है ईश्वर ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ देवों के सार भाग से राजा का सृजन किया। यह उद्धरण राजा को देवों से भी ऊँचा उठा देता है, क्योंकि राजा में अष्ट देवों के विशिष्ट गुण है। अतः वह इन देवों से भी श्रेष्ठ है।

राज अत्यन्त पवित्र माना जाता है, इस पद पर आसीन व्यक्ति परम देवता माना जाता है। नारद ने राजा को पाँच प्रकार का स्वरूप धारण करने वाला बताया है- अग्नि, इन्द्र, सोम, यज्ञ तथा कुबेर राजा को क्रोध तथा तेज से दूसरे को तृप्त करने वाला होने से, अग्नि का गुण, शत्रुओं पर आक्रमण कर विजय द्वारा इन्द्र का, शालीनता से जनता से बात करने पर सोम का, अन्याय करने के कारण यम का तथा अभावग्रस्त को वस्तु देने से कुबेर का गुण तथा स्वरूप धारण करता है। श्री काशी प्रसाद जायसवाल जी के मत से वैदिक राजतन्त्र में सावयव स्वरूप विद्यमान है।

मनु का कथन है कि राजा बालक ही क्यों न हो, परन्तु वह मनुष्य है, यह मानकर उसका अपमान नहीं करना चाहिए। ऐसे

www.ignited.in

राजा का अपमान परम देवता का अपमान माना गया है। अतः राजा को आदेश दिया गया है कि वह अपने देवत्व के अनुसार कार्य करे।

विश्वरूप में याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि देवताओं ने प्रजापति (ब्रह्म) से कहा कि हम लोेग सूर्य, इन्द्र, विष्णु, कुबेर, यम से क्रमशः महत्त, दीप्ति, शक्ति, विजय औदार्य एवं नियंत्रण लेकर मानव रूप में राजा की व्यवस्था करेंगे। मनु ने राजा शब्द की निष्पत्ति करते हुए कहा है कि प्रजा का रंजन करने वाला राजा होता है तथा उसका पद राजपद के नाम से जाना जाता है। राजा की दैवीय उत्पत्ति के इस सिद्धान्त के चिन्ह अन्य प्राचीनतम ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। ऋग्वेद के ऋचाओं में राजा को यम, कुबेर, वरूण इत्यादि देवों के नाम से सम्बोधित किया है, तो यजुर्वेद में राजा को यम, कुबेर, वरूण इत्यादि देवों के रूप में आह्वान किया है।

अथर्ववेद में भी राजा की दैवी उत्पत्ति का संकेत प्राप्त होता है। राजा को अथर्ववेद में इन्द्र, सोम, वरूण, मित्र, यम, सूर्य आदि देवों का अंश माना है। इसी वेद में यह भी बतलाया गया है कि राजपद विष्णु पद होता है। "तू विष्णु पद पर आसीन है, उस सूक्त में राजा को विष्णु पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तीनों वेदों मेेें राजा और राज्य के निर्माण किये जाने का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार मनु ने राजपद को अत्यन्त मर्यादित एवं दिव्य तथा पवित्र माना है, परन्तु भारतीय सिद्धान्त के अनुसार राजा ईश्वर का अंश तथा देव अवश्य है, परन्तु उसका देवत्व उसके शिष्ट एवं उच्च आचरण पर निर्भर है, उसमें भगवान की विभूतियाँ विद्यमान होती हैं, इन विभूतियों की प्राप्ति सर्व साधारण के लिए अत्यन्त कठिन है और जिनको वह उग्र तपस्या एवं संयम आदि के द्वारा प्राप्त करता है। इस प्रकार राजा का देवत्व मनु के मतानुसार उसके दिव्य गुणों पर आश्रित होता है। यदि वह इन गुणों को धारण न कर सकेगा, तो वह राजा होने का अधिकार खो देता है। मनुस्मृति में वर्णित राजा के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त राजा को केवल इसलिए देव मानता है कि वह दिव्य गुण धारण करता है, ऐसा नहीं कि इस पृथ्वी तल पर ईश्वर का प्रतिनिधि रूप होकर प्रजा की इच्छाओं के विरूद्ध स्वेच्छानुसार पूर्ण शासन करने का अधिकार है। मनुस्मृति में वर्णित राजपद राजधर्म के लिए विवश करता है। वह राजा का पूर्ण उत्तरदायित्व उसी राजधर्म राजपद से च्युत किये जाने का वैध रूप से अधिकारी हो जाता है। इसलिए मनुस्मृति में वर्णित प्रकरण के अनुसार राजा को प्रजा के कल्याणार्थ कार्य करने चाहिए।

राजा देवों के गुणों से युक्त है, अतः उसको अनेक गुणों को सही आचरण में लाना चाहिए। राजा को इन्द्र के समान साधु-महात्माओं आदि की इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए। राजा का सूर्यव्रत है कि वह प्रजा से कर (जंग) लेकर उसकी रक्षा करे। वायुव्रत गुण है कि वह प्रिय तथा अप्रिय व्यक्ति में समान न्याय करे। वरूणव्रत वह है जो पापियों का निग्रह करना चाहिए। मंत्री और राजा को प्रजा देखकर खुश हो, तो वह चन्द्रव्रत कहलाता है। आग्नेय व्रत में राजा को पापियों तथा दुष्ट व्यक्तियों का वध करना चाहिए। राजा को समस्त प्रजा का समान रूप से पालन करना चाहिए, वह व्रत गुण, पृथ्वी व्रत के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त राजा में आर्षत्व, पुरुषविद्, शूरवीर, दयालु, दानी तथा सुख-दुःख में समान भाव रहने की क्षमता होनी चाहिए।

1.7 राजा और शासन विधान-

राजा के तीन प्रमुख कार्य हैं- राजनयिक (प्रबन्ध अथवा कार्यकारिणी) सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी एवम् विधान निर्माण सम्बन्धी कार्य। मनु का कथन है कि राजा में सभी देवताओं की दीप्ति विद्यमान रहती है, राजा शास्त्रेचित् जिन नियमों केा प्रणयन करता है, उनका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। मेघातिथि ने राजनियमों के अन्तर्गत लिखा है कि राजधानी में उत्सव आदि मनाना चाहिए। मंत्री के घर वैवाहिक कार्यक्रम में सबको जाना चाहिए। कसाई, पशु को न मारे, पक्षियों को न पकड़े, महाजन ऋणी को न सताये, बुरी संगति न करे, ऐसे व्यक्ति को घर न आने दे, राजा को शास्त्रीय नियमों, वर्णाश्रम धर्म तथा अग्निहोत्र का विरोध नहीं करना चाहिए।

गौतम के अनुसार राजा को राजनियम धर्मग्रन्थों तथा वेद, धर्मधास्त्र, वेदांगों एवं उपनिषदों और पुराणों को लक्ष्य बनाकर बनाने चाहिए।

मनु का मत है कि राजा दुर्भिक्ष के समय निर्यात पर रोक लगा दे। यदि कोई व्यापारी इसका उल्लंघन करे, तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ले। दुर्भिक्ष तथा विपत्ति के समय राजा प्रजा का रक्षण करे। प्रजा की चोरों, आक्रमणों तथा डाकुओं से रक्षा करे। मनु का कथन है कि राजा ही युग है। राजा के कार्यानुसार चार युग होते हैं। यदि राजा आलस्य तथा अज्ञान के कारण कोई कार्य नहीं करता है, तो उस समय कलियुग होता है, उस समय राजा सुप्त अवस्था में होता है। जागृत अवस्था में होने पर तथा कार्य न करने पर उसके राज्य में द्वापर युग होता है, जब राजा राजकार्य सन्धि-विग्रह आदि और शासन-प्रबन्ध करना है, उस समय त्रेता युग होता है। जब राजा शास्त्र

www.ignited.in

द्वारा निर्दिष्ट धर्मानुसार राज्य करता है, उस समय सतयुग होता है।

मनु का कथन है कि व्यक्ति दण्ड के भय से जीते हैं, स्वभाव से ही धर्म-परायण मनुष्य दुर्लभ है, दण्ड के भय के कारण ही सम्पूर्ण संसार के व्यक्ति अपनी-अपनी वस्तुओं का उपभोग करते हैं। अधर्म परायण मनुष्यों को दण्डित करना आवश्यक है, दण्ड की दृष्टि से सम्बन्ध में मनु कहते हैं कि प्राणिमात्र के रक्षक आत्मा से उत्पन्न, ब्रह्मतेज से निर्मित दण्ड का सृजन ईश्वर ने किया है।1 वह दण्ड राजा से नेता है, शसन करने वाले हैं, चारों आश्रमों के प्रति मध्यस्त है।

मनु दण्ड का महत्व बताते हैं कि दण्ड सम्पूर्ण प्रजाओं पर शासन करता है, सबकी रक्षा करता है, सब प्राणियों के सोने पर वह अकेला जागता रहता है, विद्वानों ने धर्म को दण्ड हेतु माना है।

यदि राजा दण्ड का उचित प्रयोग करता है, तब वह धर्म और काम से समृद्ध माना जाता है, इसके विपरीत कामी, क्रोधी तथा क्षुद्र, नृत्य, दण्ड के द्वारा ही मारा जाता है, अत्यन्त तेजस्वी तथा दुर्धर दण्ड राजा उसके सम्बन्धियों को नष्ट करता है तथा दुर्ग चराचर और आन्क्षरिक्षगामी मुनियों तथा देवताओं को कष्ट पहुँचाता है। मनु ने असहाय, मूर्ख शास्त्रज्ञान से रहित राजा दण्ड प्रयोग करने का निषेध किया है। धन के विषय में निर्मल चित्त वाला सत्य प्रतिज्ञावाला शास्त्रोचित व्यवहार करने वाला, सुसहाय से युक्त तथा बुद्धिमत्ता से युक्त राजा दण्ड का प्रयोग कर सकता है। राजा को अपने राज्य में न्यायानुसार तथा शत्रु देश में कठोर दण्ड देना चाहिए। ब्राह्मणों को क्षमा तथा मित्रों से मृदु व्यवहार करना चाहिए।

राजा को इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिए कि उसके राज्य में सर्वत्र शान्ति हो। के0एम0 पाणिक्कर का कथन है कि उन्हीं सब नियमों को ध्यान में रखकर बाद में हिन्दू राजाओं को प्रेरणा मिली, जिससे उन्होंने हिन्दुत्व के पुनः उत्थान का प्रयास किया।

शक्तिशाली राजा को सुरक्षा बनाये रखने के लिए साम, दाम, दण्ड भेद इन चारों उपायों का सहारा लेना पड़ता है। साम तथा दण्ड राज्य की समृद्धि हेतु श्रेष्ठ है, शत्रु से युद्ध न करके पहले उसे तीन उपायों से वश में करना चाहिए, तीन उपायों के निष्फल हो जाने पर चतुर्थ उपाय दण्ड का सहारा लेकर शत्रु को परास्त करना चाहिए।

1.8 राजा के विशेषाधिकार-

जमींन के अन्दर गड़ी हुई सम्पत्ति पर राजा का अधिकार होता था। सम्पत्ति प्राप्त करने के पश्चात् राजा को डुग्गी बजवाकर लोगों को सूचित करना पड़ता था। तीन वर्ष बाद राजा का उस पर पूर्णाधिकार हो जाता था।

दुर्ग- कूल्लुक भट्ट का मत है कि राजधानी पर शत्रु का आधिपत्य नहीं होना चाहिए, यदि कुछ राज्य शत्रु जीत भी ले, तो कोई नुकसान नहीं, पर यदि राजधानी पर शत्रु अधिकार कर ले, तो गम्भीर संकट आ जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण राष्ट्र की भोजन सामग्री वहीं एकत्र रहती है। प्रमुख तत्व सैन्य बल सुरक्षित रहता है, दुर्ग शासन का केन्द्र है। याज्ञवल्क्य के अनुसार परिजन, कोष एवं अपनी रक्षा के लिए राज्य का प्रमुख कार्य है, दुर्ग का निर्माण करना।

1.9 मन्त्रिमण्डल की स्थिति-

मन्त्रिमण्डल शासन रूपी गाड़ी की धुरी है, क्योंकि जिस प्रकार से शासन रूपी शरीर बिना मन और मस्तिष्क के चलायमान नहीं हो सकती है, उसी प्रकार अच्छे से अच्छा शासनाध्यक्ष राज्य गाड़ी को अकेले नहीं खींच सकता है, क्योंकि शासन और प्रशासन के आदेश एवं नियम की पुस्तकावलि मन्त्रिमण्डल ही तैयार करता है।

मन्त्रिमण्डल में विशेष लोग विचार-विमर्श के लिए बैठते हैं और मण्डल की अधिकांश बातें गोपनीय रखकर, बल्कि उसे सीधे कार्य के रूप में परिणति कर दिए जाते हैं, इसमें शासनाधिपति के बहुत ही घनिष्ठ और विश्वसनीय पात्र इस समिति में सदस्य बनाये जाते हैं, चाहे आज का वर्तमान संसदीय शासन हो या अध्याय शासन हो, या फिर पहले का राजतंत्रीय शासन रहा हो, मन्त्रिमण्डल, प्रशासनिक इकाई का महत्वपूर्ण अंग रहा है। स्मृतियों में राज्य के सप्तांग वर्णन में द्वितीय स्थान पर अमात्य या सचिव का स्थान देकर उसकी आवश्यकता तथा महत्व का प्रतिपादन किया गया है। इतिहासों और पुराणों में भी सचिव की महत्ता का प्रतिपादन मिलता है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने सुन्दरकाण्ड में इसका सहज वर्णन किया है जैसे-

सचिव, वैद्य, गुरु, तीन, जौ प्रिय बोलहि भय आस।

राज्य, धर्म, तन, तीन करि, होहि बेगहि नास।।

(रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड दोहा)

www.ignited.in

उपर्युक्त दोहे से हमें यह ज्ञात होता है कि सचिव, गुरु, वैद्य ये तीन किसी डर वश या शासन के भय से कोई नीति का निर्णय यदि गलत देते हैं, तो विनाश हो सकता है। इसलिए शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए सचिव (मंत्री) को किसी भी नीति का निर्णय निर्भय होकर लेना चाहिए। किसी के भी दबाव में आकर निर्णय या परामर्श गलत नहीं देना चाहिए। राजा को शासन में मंत्री (सचिव) को हर प्रकार से प्रशिक्षित कर तब नियुक्त करना चाहिए, जो राजा को ऐसा नहीं करता, वह राजा अपना शासन सुचारु रूप से नहीं चला सकता। अकेला व्यक्ति कोई कठिन कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकता है, इसलिए जब किसी कार्यक्षेत्र का दायरा लम्बा होता है।

मनु ने अमात्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जो कार्य सरल है, वह भी एक व्यक्ति के लिए कठिन (दुष्कर) हो जाता है, तो विस्तृत राज्य जो कठिन कार्य है, उसे अकेला राजा सुव्यवस्थित रूप से नहीं चला सकता। इसलिए राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए अन्य व्यक्तियों अर्थात् मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त एक ही व्यक्ति सब कुछ जान लेने में समर्थ नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न पुरुषों में भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धि, वैभव देखा गया है। इसलिए राज्य सम्बन्धी विषयों में एक ही व्यक्ति से राजा सदैव वास्तविकता पर पहुँच सकें, ऐसा सम्भव नहीं है, इसलिए राजा को राज्य के शासन सम्बन्धी समस्याओं पर मंत्रणा लेने के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों तथा कई व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। ऋग्वेद में सभा का वर्णन है। यह एक प्रकार से मंत्रिपरिषद ही थी, अन्य प्राचीन ग्रन्थों में समिति, संगति, विदथ, परिषद् आदि का वर्णन किया गया है।

महत्व- मनु ने 'सचिव' और याज्ञवल्क्य स्मृति में 'मंत्री' शब्द का उल्लेख किया है। इन दोनों स्मृतियों में सचिव के नियुक्ति का वर्णन अलग-अलग से किया है, राजा को समय-समय पर शासन-प्रशासन सम्बन्धी कार्यों के परामर्श के लिए एवं सहायता के लिए मनु के मंत्रिमण्डल स्थिति का विधान किया है। मनु का विचार था कि इस धराधम पर जो कुछ है, वह सब ब्राह्मण ही हैं, क्योंकि ब्राह्मण अग्रजन्मा है और ब्रह्म के ज्येष्ठ व श्रेष्ठ पुत्रों में गणना की जाती है। मनु ने मन्त्रियों को सहायक बताया है, मानव धर्मशास्त्र में राजा के मंत्रियों एवं मन्त्रिगणों से परामर्श लेने की सलाह दी है। राजा को चाहिए कि मन्त्रियों को शासन कार्यों में यथा- योग्य, बुद्धि, विवके की परीक्षा लेकर, बुद्धि विवके के अनुसार उन्हें कार्य विभागों का बँटवारा करें और उन्हीं के अनुसार उनके विभाग से सम्बन्धित परामर्श ले, उचित मंत्री ही अपने विभाग के कार्य को अच्छे ढंग से चला सकता है, इसलिए मंत्रिमण्डल में राजा को मध्यस्थता करनी चाहिए और प्रत्येक मंत्रियों की आपस में बुद्धि की परीक्षा लेकर उसमें सर्वश्रेष्ठ को अपना परामर्शदाता नियुक्त करना चाहिए।

1.10 मंत्रिमण्डल की संरचना-

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति, मंत्रिमण्डल मंत्रिपरिषद् का कहीं उल्लेख नहीं करती है। बल्कि इसके स्थान पर मनु ने सचिव शब्द का प्रयोग किया। इसी सचिव शब्द से मंत्रिमण्डल का अनुमान करते हैं, क्योंकि शासन और प्रशासन दोनों रहना चाहिए। इसलिए मनु का सचिव शब्द प्रशासन से मेल खाता है, इसलिए जहाँ पर प्रशासन है, वहाँ शासन रहना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि ये आपस में सहयोगी और एक-दूसरे के पूरक हैं, मनु ने राजा को मंत्री नियुक्त करने का आदेश दिया है। मंत्रियों की नियुक्ति हो जाने पर राजा का यदि उचित सलाह और परामर्श मिलता है, तो इससे राज्य का चहुँओर विकास प्रस्फुटित होता है और यही मंत्री या सचिव अनुचित सलाह दे, तो राज्य का सूर्यास्त भी हो सकता है। इसलिए राजा को मंत्री को कभी भयभीत करके कोई सलाह नहीं लेनी चाहिए। राजा को जिस प्रकार की संगति और सलाह मिलेगी, उसके अनुसार वह कार्य करता है। इस मण्डल का इतना बड़ा महत्व होने के कारण प्राचीन ग्रन्थों और पुराणों में भी मंत्रिमण्डल की नियुक्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

मंत्रिपरिषद के सदस्यों की संख्याओं के बारे में कोई भी विद्वान कोई एक निर्धारित संख्या नहीं बतलाए और यही परम्परा आज के मंत्रिमण्डल में भी कायम है, हमारे संवैधानिक विशेषज्ञ भारतीय संविधान की रचना करते समय कोई एक निर्धारित संख्या मंत्रिमण्डल के लिए नहीं बताये हैं जबकि हमारे संविधान में इतिहास, पुराणों, शास्त्रों, स्मृतियों और उपनिषदों, देश और विदेश से कुछ-कुछ अंश लेकर इतना विशाल संविधान की रचना कर डाले, मंत्रिपरिषद को सदस्यों की संख्या के विषय में प्राचीन भारत के राजशास्त्र प्रणेताओं में एकमत नहीं है।

इसका कारण यह प्रतीत होता है कि एक ओर तो मंत्रिपरिषद की सदस्यता के लिए विविध विषयों के अलग-अलग विशेषता होनी चाहिए। इसलिए परिषद के सदस्यों की संख्या बड़ी होनी चाहिए। परन्तु दूसरी ओर यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि राज्य कल्याण के लिए मंत्र गुप्त रखना चाहिए, जो बड़ी संख्या वाली मंत्रिपरिषद में सम्भव नहीं। इस उद्देश्य से मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या न्यूनतम होनी चाहिए और उस संख्या पर नियंत्रण होना अनिवार्य है, इसलिए प्राचीन भारत के राजशास्त्र प्रणेताओं ने इस विषय में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं।

www.ignited.in

मंत्रिपरिषद की सदस्य संख्या के विषय में कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में लिखते हैं- "मनु ने अपने मनुस्मृति में मंत्रिपरिषद के बारह सदस्यों को रखने पाने की व्यवस्था की है।" बृहस्पति के अनुयायियों के मतानुसार सोलह और शुक्राचार्य के अनुयायियों ने मंत्रि-परिषद के बीस सदस्य होने के लिए बताया है। परन्तु कौटिल्य अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं- मेरे मतानुसार समय और आवश्यकतानुसार मंत्रि-परिषद में सदस्य होने चाहिए। भीष्म के मतानुसार मंत्रि-परिषद में सैंतीस सदस्य रखना उचित है। यह सदस्य चारों वर्णों के प्रतिनिधि होने चाहिए। शुक्रनीति में मंत्रिपरिषद में दस सदस्य उपलब्ध होने चाहिए, ऐसी व्यवस्था की गयी है।

1.11 मंत्रियों का मनोनयन-

भारतीय शासन संहिता में मनोनयन प्रक्रिया कोई नई परम्परा नहीं है। बल्कि यह जब राजतंत्र था, तब भी था। राज्य की शासन सत्ता को विधिक और परिमार्जित ढंग से चलाने के लिए मंत्रि-परिषद की कल्पना की गयी, क्योंकि मंत्रि-परिषद की सहायता के बिना वह राज्य अपने प्रजावत्सल को सहीं ढंग से अवलोकित अकेले राजा नहीं कर सकता।

इसलिए राजा की सहायता और सलाह के लिए मंत्रिमण्डल का आर्विभाव हुआ और यदि इस मंत्रिमण्डल रूपी संस्था का निर्माण नहीं किया होता, तो प्रजा रंजन के कार्य में असफलता, शासन-सत्ता की होती है। साम्राज्य के विभिन्न भागों में राजकुमार अथवा राजकुल से सम्बन्धित व्यक्तियों को राज्यपाल नियुक्त करने की परम्पा चलती रही है। पुराणों में वायु पुराण में कहा गया है कि पुष्यमित्र ने अपने पुत्रों को साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में सह-शासक नियुक्त कर रखा था। मालविकाग्निमित्र से पता चलता है कि उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा का उप राजा था। वसुमित्र के उद्धरण से स्पष्ट होता है कि राजकुमार सेना का संचालन करते थे। मालविकाग्निमित्र में 'अमात्य-परिषद' तथा महाभाष्य में 'सभा' का उल्लेख मिलता है। यह मौर्यकालीन मंत्रिपरिषद थी।

इससे स्पष्ट होता है कि शासन में सहायता प्रदान करने के निमित्त एक मंत्रि-परिषद भी होती थी। कौटिल्य के समान मनु ने भी मंत्रि-परिषद की आवश्यकता पर बल दिया और आगे लिखा है कि सरल कार्य भी एक मनुष्य के लिए कठिन हो जाता है, विशेषकर महान फल देने वाला राज्य अकेले राजा के द्वारा कैसे चलाया जा सकता है।

(1) औपनिवेषिक सिद्धान्त-

मंत्रि-परिषद की सदस्यता के उल्लेख के लिए परम्परागत सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं। इस सिद्धान्त की स्थापना करते हुए मनु यह व्यवस्था देते हैं कि राजा की अपनी मंत्रि-परिषद में मौल अर्थात् परम्परागत सेवकों में से सदस्य नियुक्त करना चाहिए। इस प्रसंग में मौल पद की व्यवस्था करते हुए कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि मौल पद से तात्पर्य पिता-पितामह से ले आए हुए सेवकों में से है।4 महाभारत के शान्तिपर्व में ऐसे व्यक्तियों को मंत्रिपरिषद में स्थान दिये जाने का प्रतिपादन किया है, जो परम्परागत मंत्रि घराने से सम्बन्धित है। इस प्रकार मनु ने निश्चयपूर्वक मंत्रि परिषद के लिए परम्परागत सिद्धान्त की स्थापना करते हैं।

(2) सम्यक् शास्त्रज्ञता-

मनुस्मृति में मंत्रि-परिषद की दूसरी योग्यता का निर्धारण शास्त्रज्ञता रखा है, मनुस्मृति में इसके लिए एक संक्षिप्त पद का प्रयोग कर इसकी स्थापना की है।1 इस व्यवस्था में मंत्रि-परिषद के सदस्यों की नियुक्त करते समय राजा के इस विषय का पूर्ण विश्वास होना चाहिए कि मंत्रि-परिषद की सदस्यता के लिए वह जिन व्यक्तियों का वर्णन करने जा रहा है, वह उसका शास्त्रीय ज्ञान पूर्ण और वह ज्ञान विधिवत् प्राप्त किया गया है। इस प्रकार मंत्रि-परिषद की सदस्यता के लिए अभ्यर्थी को जब तक धर्मशास्त्रों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त न होगा, तब तक वह तद्विषयक चिन्तन कर नवीन योजनाओं का निर्माण कर उन्हें प्रजा के कल्याण हेतु रचनात्मक रूप देने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए मनु ने शास्त्रों के सम्यक् ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता बताकर इसको मंत्रि-परिषद के लिए अनिवार्य योग्यता निर्धारित की है। मनु ने स्पष्ट व्यवस्था दी है कि इन शास्त्रों के साधारण ज्ञान प्राप्त करने मात्र से वह अपने कत्तव्य पालन करने में सफल नहीं हो सकते। इन शास्त्रों के गंभीर अध्ययन करने एवं तद्नुसार उनके वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त ही मनुष्य इस योग्य हो जाता है कि वह मंत्रि-परिषद के महान कत्तव्यों का पालन करने में समर्थ हो सके। इसके अतिरिक्त मनु ने मंत्रिमण्डल के सदस्यों का शौर्यगुण की योग्यता पर बल दिया है, क्योंकि शूरवीर मनुष्य संकट में भी अपने पथ से विचलित नहीं होता है। याज्ञवल्क्य ने धैर्यवान पुरुषों की योग्यता को महत्व दिया गया है। दृढ़-संकल्प वाले मनुष्य ही किसी रचनात्मक कार्य को पूर्ण कर सकते हैं।

मनु ने मंत्रि की नियुक्ति के पूर्व भली-भाँति उसकी परीक्षा लेने के लिए बताये हैं, जो परीक्षा में निर्धारित योग्यता में सर्वश्रेष्ठ

www.ignited.in

हो, उसी को मंत्री नियुक्त करना चाहिए। मनु ने राजा को निर्देशित किया है कि मंत्रि-परिषद में सुपरीक्षित व्यक्तियों को ही सदस्य बनाना चाहिए। इन योग्यताओं के अतिरिक्त मंत्रिमण्डल के सदस्यों का पराक्रमी शास्त्र-विद्या में निपुण होना आवश्यक बताया है।

याज्ञवल्क्य ने ज्ञानी, वंश से चले आने वाले मंत्रियों एवं धैर्यवान, पवित्र पुरुषों का चयन करने को कहा है। मंत्रियों का राजा के प्रति दृढ़-भक्ति होना आवश्यक बताया है, श्रेष्ठ आचरण करने वाले सदस्यों को हमेशा दर-दर भटकाव होता है, इसलिए मनु ने बताया कि श्रेष्ठ आचरण करने वाला शीघ्र ही राजा का विश्वास पात्र हो जाता है।

मंत्रियों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, पद, मत्सर आदि बुराईयों से पथ विचलित होकर अपनी चारित्रिक विशेषताओं को नहीं खो देना चाहिए। चरित्र, बुद्धि, प्रतिभा तथा भक्ति सम्बन्धी गुणों को समावेश होना अति आवश्यक माना है। मनु ने वंश परम्परा से चले आये, शास्त्र, ज्ञाता, शूरवीर, शस्त्र विद्या में निपुण, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न सात-आठ मंत्रियों के चयन का आदेश दिया।

(3) उच्चकुल की वंशावली-

रक्त की परम्परा सदियों पुरानी परम्परा है, यह कोई आज की नई परम्परा नहीं है और विशेष कर प्राचीन भारत में मनुष्य के रक्त के प्रभाव की ओर विशेष महत्व दिया गया है। उस समय के युग में अधिकांश लोगों की यह धारणा थी कि कि उच्च कुल की वंशावली से या रक्त के अच्छे आचरण की सम्भावना रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनु ने स्मृति में मंत्रि-परिषद के जिन सदस्यों की नियुक्ति हेतु आदेश दिया है, वे मंत्रि-परिषद के सदस्य कुलीन वंश में उत्पन्न हुए व्यक्ति होने चाहिए। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कुल की उच्चता मात्र ही मंत्रि-परिषद की सदस्यता का आधार माना गया है। मनुस्मृति में मंत्रि-परिषद की सदस्यता के निमित्त जहाँ कुल की उच्चता का विधान किया गया है, वहीं बुद्धि एवं सदाचरण विशेष प्रकार की अन्य योग्यताएँ की भी अनिवार्यता बतायी गयी है।

1.12 मंत्रियों के अधिकार एवं कत्र्तव्य-

मन्त्रियों के कत्र्तव्य और अधिकार की जो कार्य शैलियाँ पुराणों, उपनिषदों और स्मृति साहित्यों में थी, वह परम्परा आज भी हमें देखने को मिलती है, जो उस समय राजतंत्र में राजा को सहायता और सलाह के लिए मंत्रि-परिषद थी और उसमें प्रत्येक विभाग के मंत्री अपनी विभागीय कार्य, नीतियों की और अपने विभाग सम्बन्धी समस्त गोपनीय हो या खुली रिपोर्ट राजा को देते थे, राजा अपने राज्य के प्रत्येक विभाग में मंत्री की नियुक्ति कर समस्त अपने अधिकार क्षेत्र की गतिविधियों का संचालन सुचारु ढंग से करता था।

वही परम्परा आज भी भारतीय संविधान में वर्णित किया गया है, इसमें लिखा गया है कि आज के मुख्य कार्यपालक (राष्ट्रपति) को सहायता और सलाह के लिए मंत्रि-परिषद होगी, आज की शासनाध्यक्ष अपने अधिकार क्षेत्र की जानकारी अपने मंत्रियों के द्वारा ही रखता है, सभी राजनीतिक ग्रन्थों में राजा को मंत्रियों के राय लेने के लिए अनुमति दी गयी है। मनु ने राजा को मंत्रियों से सामूहिक और अलग-अलग दोनों विधि से मन्त्रणा देने को कहा है।

अलग-अलग भाव न होने के कारण राजा को उनके अभिप्राय को जानकार मति से जो श्रेष्ठ ज्ञात हो, उसे कायान्वित करना चाहिए। याज्ञवल्क्य का कथन है कि राजा मंत्रियों के सलाह से अपनी बुद्धि से कत्र्तव्य का चिन्तन करे। मनु ने कहा है कि राजा स्वयं अन्तिम निर्णय करे, किन्तु अन्यत्र कहा है कि राजा सम्पूर्ण कार्य ब्राह्मण मंत्री को सौंप दे, उससे स्पष्ट होता है कि राजा मंत्रियों से मंत्रणा करके अपना निर्णय ले, फिर वह ब्राह्मण मंत्री से सलाह ले। राजा, प्रजा का हित चिन्तन होता था, तो वह मंत्रियों की सलाह का उल्लंघन नहीं करता था। राजा के लिए कल्याणकारी कार्य करना ही मंत्रिपरिषद का मुख्य ध्येय था। अमात्य अपने विभागों का अच्छी तरह संचालन करते थे।

उपसंहार

मनुस्मृति की सबसे बड़ी देन है मनुष्य में देवत्व की कल्पना, उसकी चेतना तथा उत्थान। मनुष्य 'सामग्री' अथवा पदार्थ न होकर चेतना का केन्द्र है, उसके अध्ययन, तथा व्यवस्था के लिए सामान्य सिद्धान्तों तथा नियमों से ही कार्य नहीं चल सकता है, बल्कि उसका वास्तविक विवेचन एक हद तक दार्शनिक प्रणाली के द्वारा सम्भव है। दर्शन तथा समाज व्यवस्था दोनों ही सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित हैं और जो मानव जीवन में सतत् श्रृँखला के रूप में परिलक्षित होता है। इस प्रकार मनुस्मृति द्वारा निर्धारित व्यवस्था वैज्ञानिक, सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर एक बौद्धिक, सामाजिक दर्शन पर आधारित है।

मनुस्मृति की भाषा शैली पाणिनी सम्मत संस्कृत व्याख्या है। इस साहित्य धर्मशास्त्र में कहीं भी कठिन शब्दावली का चयन नहीं किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के जो भी तत्व बताये

www.ignited.in

गये हैं, वह सब वेद विहित धार्मिक तत्व है फिर भी वैदिक शब्द स्मृति साहित्य में नही ंके बराबर ही आ सके हैं।

मनुस्मृति की भाषा शैली पाणिनी सम्मत संस्कृत व्याख्या है। इस साहित्य धर्मशास्त्र में कहीं भी कठिन शब्दावली का चयन नहीं किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के जो भी तत्व बताये गये हैं, वह सब वेद विहित धार्मिक तत्व है फिर भी वैदिक शब्द स्मृति साहित्य में नहीं के बराबर ही आ सके हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रामायणकविन्, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, सम्पूर्णानन्द विश्व विद्यालय, प्रथम संस्करण,
2. रामायण चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, 2001
3. रामायण तिलक उत्तराकाण्डम्, शिवसहाय, परिमल पब्लिकेशन्स, 1991
4. रामकथा-त्रयी-वाल्मीकि भास-कालिदास, शीतांशु रथ, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1992
5. रामायण महातीर्थम्, कुबेरनाथ राय, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 2002
6. रामायण में प्रतिबिम्बत संस्कृति एक परिशीलन, गीता सिंह, क्लासिकल पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2003
7. वाल्मीकि रामायण का छन्द-विश्लेषण, डॉ. मंजुला सहदेव, नाग प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली, 1900
8. वाल्मीकि रामायण का समीक्षात्मक अध्ययन, मिनी भारद्वाज, शुभद्रा प्रकाशन, दिल्ली, 2002
9. वाल्मीकि के वीर हनुमान, आचार्य पुष्पेन्द्र कुमार, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2007
10. वाल्मीकि और प्राकृत अपभ्रंश राम साहित्य, पं. मिथिला प्रसाद, के.के. पब्लिकेशन्स, 2008
11. वाल्मीकि रामायण में रस -विमर्श, महावीर अग्रवाल, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1992
12. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना, डॉ. ब्रजेश, नाग पब्लिशर्स, 2001

Corresponding Author

Madhu Gupta*

Research Scholar, Department of Sanskrit, Maharaja Surajmal Brij University, Bharatpur, Rajasthan

www.ignited.in